भारतीय भाषाओं में शुरुआती साक्षरता

मैक्सिन बर्न्टसन

जब बच्चा पाँच या छह साल की उम्र में स्कूल में दाख़िल होता है, तो उसके पास पहले से ही अपनी पहली भाषा की बुनियादी समझ होती है। उसके पास कम-से-कम 4000 शब्दों का भण्डार होता है और बुनियादी व्याकरण पर भी अच्छी पकड़ होती है। इसका मतलब यह कि वह दूसरों के साथ पारस्परिक भाषायी सम्पर्क बना सकता है और वार्तालाप कर सकता है। इसके अलावा उसके दिमाग़ में दुनिया का एक प्रतिरूप बन जाता है जो उस समय तक हुए उसके जीवन-अनुभवों को सुनियोजित करता है और उन्हें एक ढाँचे में बिठाता है।

स्कूल जाने लगने के बाद, पहले तीन वर्षों में उसका प्रमुख कार्य साक्षर बनना होता है, यानी, उन बातों को पढ़ना और लिखना सीखना जिन्हें ज़बानी तौर पर वह पहले से जानता है। साक्षर बनने की प्रक्रिया में बच्चा उन बातों के बारे में एक वैचारिक बोध विकसित करने की दिशा में कुछ शुरुआती क़दम रखता है, जिन्हें वह अवचेतन स्तर पर पहले से जानता है।

शुरुआती साक्षरता सिखाने के मुद्दे पर पश्चिम में चली बहस

पश्चिमी देशों में, खासतौर पर अमेरिका और ब्रिटेन में शुरुआती साक्षरता सिखाने की विधि लम्बे समय से जोशीली बहस का मुद्दा रही है। पारम्परिक रूप से, बच्चों को ध्वनिक विधि द्वारा सिखाया जाता था जिसमें जोर कूटानुवाद में निपुणता हासिल करने पर होता था - अर्थात, ध्वनियों और अक्षरों की पारस्परिक संगत बिठाना सीखना। 1930 के दशक में, एक नई पद्धति अपनाई गई जिसमें बच्चों को पूरे-पूरे शब्दों को देखकर पहचानने यानी अवलोकन विधि ('होल-वर्ड रिकॉगनिशन') के द्वारा लगभग 50 शब्दों की बुनियादी शब्दावली सिखाना शुरू किया गया। पर 1955 में रुडॉल्फ फ्लैश्क की किताब *व्हाय जॉनी कान्ट रीड* के प्रकाशन के साथ ही इस पद्धति की कड़ी आलोचना होने लगी। फ्लैश्क ने तर्क दिया कि अवलोकन विधि ने विद्यार्थियों की एक ऐसी पीढ़ी पैदा की थी जो न तो शब्दों को ढंग से पढ़ सकते थे और न ही उनके हिज्जे (स्पेलिंग) कर सकते थे।

उसके बाद से पढ़ने के प्रक्रिया-विज्ञान पर काफ़ी प्रयोग और बहुत तीव्र बहसें हुई हैं। कुछ विशेषज्ञों ने पढ़ने की ध्वनि-आधारित पद्धति (*फ़ोनिक्स*) के व्यवस्थित शिक्षण की वकालत की है, तो कुछ ने 'समग्र भाषा' पद्धति की, जिसका तर्क है कि बच्चे अर्थपूर्ण पाठ्यसामग्री के साथ सक्रिय जुड़ाव होने पर ही पढ़ना और लिखना सीखते हैं। कुछ समय के लिए यह विवाद इतना कटु हो गया था कि इसे 'पाठन युद्ध' कहा जाने लगा था। कुछ मामलों में तो इस विवाद में राजनैतिक स्वर भी शामिल रहे हैं, जब रूढ़िवादियों ने ध्वनि विज्ञान के शिक्षण की वकालत की है।

भारत में बहस की कमी

दूसरी तरफ, भारत में, शुरुआती पढ़ना सिखाने के तरीक़ों पर बहस और प्रयोग न के बराबर हुए हैं। कभी-कभार तो पश्चिम से मिले ज्ञान की विवेचना किए बग़ैर उसे जस-का-तस स्वीकार कर लिए जाने की प्रवृत्ति रही है - और अक्सर यह ज्ञान काफ़ी समय पहले का होता है।

जो थोड़ी बहुत चर्चा होती भी है उसमें इस बात का बिरले ही ध्यान रखा जाता है कि अँग्रेज़ी में शुरुआती पढ़ना सिखाने की दिक़्क़तों और अधिकांश भारतीय भाषाओं में पढ़ना सिखाने की दिक़्क़तों में महत्त्वपूर्ण अन्तर है। अँग्रेज़ी के हिज्जे अराजकतापूर्ण होते हैं क्योंकि हिज्जे करने की पद्धति बहुत पहले बनाई गई थी। इसका मतलब है कि शब्दों का उच्चारण बदलता गया जबकि उनके हिज्जे वही के वही रहे। इसका ही नतीज़ा है कि अँग्रेज़ी वर्णमाला का कोई दिया गया अक्षर (खास तौर पर स्वर) कई तरह से उच्चारित किया जा सकता है, और कोई दी गई ध्वनि अलग-अलग अक्षरों द्वारा दर्शाई जा सकती है। संक्षेप में, अँग्रेज़ी में ध्वनियों और अक्षरों के बीच का तालमेल ठीक नहीं है।

भारतीय भाषाओं में ध्वनि-अक्षर का तालमेल

भारतीय भाषाओं में स्थिति काफ़ी फर्क है। यदि हम मराठी का उदाहरण लें, तो कुछ अपवादों को छोड़कर, देवनागरी लिपि के प्रत्येक अक्षर को एक निश्चित ढंग से ही उच्चारित किया जाता है, और प्रत्येक ध्वनि को केवल एक ही अक्षर द्वारा ही दर्शाया जा सकता है। इसलिए, सतही रूप से देखने पर, किसी भारतीय भाषा को पढ़ना सीखना अँग्रेज़ी पढ़ना सीखने की तुलना में कहीं ज़्यादा आसान काम होना चाहिए।

भारत में पढ़ना सिखाने के पारम्परिक तरीक़े में अक्षर और ध्वनि के बीच की इस पारस्परिक संगति पर ध्यान दिया गया। विद्यार्थी देवनागरी लिपि के बुनियादी अक्षरों को याद करते थे और पहचानना सीखते थे। इसके अलावा वे लोग इन मूलाक्षरों को पारम्परिक क्रम में याद करते थे। यह क्रम ऐसे प्राचीन व्याकरण शास्त्रियों द्वारा कुशलतापूर्वक तैयार किया गया था जिन्होंने प्रत्येक ध्वनि के क्रमबद्ध स्थान और उसके उच्चारण के ढंग का विश्लेषण किया था। बच्चा प्रत्येक अक्षर के साथ ही, उससे शुरू होने वाले एक शब्द को भी याद करता था - 'ए फॉर ऐपल' का समतुल्य भारतीय भाषायी संस्करण। मूलाक्षर सीखने के बाद बच्चा बाराखड़ी सीखता था जिसमें प्रत्येक व्यंजन अक्षर में एक संक्षिप्त स्वर चिन्ह (विभिन्न मात्राएँ तथा अनुस्वार और विसर्ग चिन्ह) जुड़ जाता है। इसके बाद विद्यार्थी संयुक्त व्यंजनों (जोड़ाक्षरों) के चिन्हों को सीखता था; यह सम्भवत एकमात्र ऐसा पहलू है जहाँ इस लिपि में पारदर्शिता की कमी दिखाई देती है। एक बार जब कोई बच्चा लिपि के सभी संकेत सीख लेता था तो फिर उसे शब्दों, वाक्यों और कहानियों या कविताओं के माध्यम से लम्बे पाठ्यांशों से परिचित कराया जाता था।

यह बेहद तर्कसंगत और व्यवस्थित तरीक़ा है और लाखों भारतीयों ने इस तरह से पढ़ना सीखा है। हालाँकि, इसके अपने दोष भी हैं, ख़ासतौर पर किसी कक्षा की परिस्थिति में जहाँ कई बच्चे

स्कूल जाने वाली पहली पीढ़ी के होते हैं। किसी बच्चे को वास्तव में कोई अर्थपूर्ण सामग्री पढ़ सकने लायक बनने में काफ़ी समय लग सकता है। इस तरह सभी लिपि चिह्नों का कूटानुवाद करने के कौशल प्राप्त करने की प्रक्रिया में काफ़ी परिश्रम और धीरज की ज़रूरत होती है। इसी कारण यह पद्धति वहाँ सबसे अधिक कारगर होती है जहाँ घर का वातावरण सीखने और अध्ययन करने में सहयोगी हो।

सहज बुद्धि कहती है कि भारत में शुरुआती साक्षरता सिखाने में हमें उच्चारण और लिपि के लगभग सटीक तालमेल का लाभ लेना चाहिए। इसका मतलब होगा अक्षर पहचानना सिखाना। आप चाहें तो इसे ध्वनि विज्ञान (फ़ोनिक्स) सिखाना कह सकते हैं। पर साथ ही हम अपने तरीक़े में अर्थपूर्ण और भावनात्मक रूप से आकर्षक पाठ्यांशों को शामिल करके बच्चों को उनसे परिचित होने का मौका दे सकते हैं। मैंने प्रगट शिक्षण संस्था (पीएसएस) की पढ़ने की पद्धति विकसित करने में यही करने की कोशिश की है।

पीएसएस पद्धति

मैंने यह तरीक़ा 1987 में विकसित किया। हालाँकि यह किसी भी तरह से आमूल परिवर्तनकारी या क्रान्तिकारी नहीं है। यह सम्भवत: काफ़ी कुछ उन तरीक़ों जैसा ही है जो सफल शिक्षकों द्वारा सालों से अपनाए जा रहे हैं। इसके तीन भाग हैं :

1. ध्वनियों तथा अक्षरों के तालमेल का व्यवस्थित शिक्षण (लिपि संकेतों का कूटानुवाद)
2. बच्चों द्वारा बताए गए अनुभवों को लिखना और फिर उस लिखे हुए वर्णन को पढ़ने में बच्चों की मदद करना (जीवन से जुड़ा वाचन/ अनुभव-आधारित भाषा पद्धति)
3. अतिरिक्त सामग्री जैसे कहानियों, कविताओं आदि का वाचन।

कूटानुवाद : दूसरे और तीसरे भाग, जीवनाधारित वाचन तथा अतिरिक्त सामग्री पढ़ना, का आशय शायद स्वतः स्पष्ट है, और जाहिर है कि उनकी विषयवस्तु समय-समय पर बदलती रहेगी। पीएसएस पद्धति का सबसे महत्त्वपूर्ण स्थायी भाग कूटानुवाद है, जिसके लिए हमने एक छोटी -सी प्रवेशिका लिखी है, *अपन वाकू या* (चलो पढ़ें)। यदि मेरी इस पद्धति में कोई ख़ास अन्तर्दृष्टियाँ हैं तो वे सम्भवतः कूटानुवाद के इसी हिस्से में हैं।

सबसे पहले तो मुझे यह एहसास हुआ कि बच्चों को पढ़ने के लिए तैयार करते वक्त ध्वनि-इकाइयों (फ़ोनेमिक्स्) के बोध के विकास पर बहुत कम ध्यान दिया जाता है। जब बच्चा बोलना सीखता है तो वह अचेतन रूप से भाषा की ध्वनि-इकाइयों को प्राप्त करता है। पढ़ना सीखने से पहले, इस अचेतन ज्ञान का सचेतन ज्ञान में बदलना ज़रूरी है। और तभी इस तरह की बात कहने का कोई अर्थ होता है कि "यह चिन्ह 'म' की ध्वनि को प्रदर्शित करता है।"

एक बार बच्चे इस बात से अवगत हो जाएँ कि उनकी भाषा ध्वनि इकाइयों से मिलकर बनती है, फिर हम उन्हें अक्षरों (वर्णों), शब्दों और वाक्यों के लिखित स्वरूप सिखा सकते हैं। विशेषज्ञों के बीच इस बात को लेकर असहमति है कि इनमें से किसे पहले सिखाया जाना चाहिए। मैंने

शुरूआत के लिए तीन अक्षर लिए, दो स्वर चिन्ह लिए, और एक शब्द अवलोकन द्वारा पहचानने के लिए: *आई* - 'माँ।' फिर, उसी पाठ में, मैंने वे सारे शब्द भी दिए हैं जो इन अक्षरों से बन सकते हैं, और वे सारे वाक्य दिए हैं जो इन शब्दों से बन सकते हैं।

सिखाए जाने वाले अक्षरों का चयन करने में, मैंने सिल्विया ऐश्टन वार्नर के इस सुझाव का इस्तेमाल किया है कि हमें उन शब्दों से शुरुआत करना चाहिए जिनके प्रति बच्चा भावनात्मक जुड़ाव महसूस कर सके। हालाँकि, मैंने प्रत्येक बच्चे से उससे सम्बन्धित प्रमुख शब्दावली निकालने का कोई प्रयत्न नहीं किया, पर मैंने बच्चे, उसकी माँ, और माँ के भाई की ओर इशारा करने वाले शब्दों से शुरुआत की। चयनित शब्द थे: *हा/ही* 'यह'; *मी* 'मैं'; *माझा/माझी* '*मेरा/मेरी*'; *आई* 'माँ'; मामा; मामी।

इन शब्दों को इस्तेमाल करने के लिए शुरू से ही कुछ संक्षिप्त स्वर चिन्ह (मात्राएँ) सिखाना ज़रूरी था। पहले पाठ में *कणा* (आ की मात्रा) तथा *वेलन्ती* (ई की मात्रा) से बच्चों का परिचय कराया गया। प्रत्येक पाठ में ऐसी दो या तीन मात्राओं को शामिल करके हम तुरन्त ही बच्चों द्वारा पढ़े जा सकने वाले शब्दों की संख्या बढ़ा देते हैं। केवल पाँच या छह पाठों के बाद ही बच्चा एक छोटी कविता या कोई सम्बन्धित कहानी (शुरू में सिर्फ़ कुछ वाक्य लम्बी) पढ़ सकने के काबिल हो जाता है।

शिक्षक की भूमिका

कोई भी पद्धति या कोई भी पाठ्यपुस्तक शिक्षक का स्थान नहीं ले सकती। मुझे तब एक दुखदायी अनुभव हुआ जब मैंने एक शिक्षिका को हमारी प्रवेशिका (प्राइमर) का इस्तेमाल अपने विद्यार्थियों को पाठ के कुछ वाक्य याद करवाने के लिए करते हुए देखा। हम बच्चों को अच्छे से बनाई गई पाठ्यपुस्तकें दे सकते हैं, उन्हें पूरक सामग्री दे सकते हैं। पर अन्तिम विश्लेषण तो यही है कि शिक्षकों के पास अपनी एक सुविचारित धारणा होना चाहिए कि पढ़ना क्या होता है। उनके पास कक्षा प्रबन्धन का कुछ कौशल होना चाहिए ताकि वे प्रवीणता के विविध स्तरों पर बच्चों के लिए उपयुक्त शिक्षा की व्यवस्था कर सकें। हाँ यह सोचने का विषय है कि यह सब करने के लिए शिक्षकों को कैसे प्रशिक्षित किया जाए।

सन्दर्भ

- मार्गरेट डॉनल्डसन अपने प्रतिष्ठित अध्ययन, 'चिल्ड्रन्स माइन्ड्स' (1978. लन्दन: फोन्टाना) में इस विचार को बहुत ही कुशाग्रता से आगे बढ़ाती हैं।
- जिएन एस. चॉल ने इस बहस की 1967 तक की स्थिति का विवरण अपनी किताब 'लर्निंग टू रीड: द ग्रेट डिबेट' (1967, मैक्ग्रॉ हिल) के पहले अध्याय में दिया है। ज़्यादा आधुनिक सर्वेक्षण हेतु रॉबिन्सन, रिचर्ड डी.; मैक्केना, माइकल सी.; और वैडमैन, जूडी एम. (1996) द्वारा लिखी गयी 'इश्यूज़ एण्ड ट्रैन्ड्स इन लिट्रेसी एजुकेशन', एलिन एण्ड बेकन को पढ़ें। अमेरिका में, 2002 के 'नो चाइल्ड लैफ्ट बिहाइण्ड' (एन.सी.एल.बी.) एक्ट में एक रीडिंग

फर्स्ट इनीशियेटिव शामिल है जो ध्वनिविज्ञान (फ़ोनिक्स) के इस्तेमाल की बहुत ज़ोर से वकालत करता है। इस क़दम का एक बहुत बड़ा नकारात्मक परिणाम हुआ 'डाइबेल्स' (डाइनैमिक इन्डीकेटर्स ऑफ बेसिक अरली लिट्रेसी स्किल्स) नामक परीक्षा का व्यापक उपयोग। इस परीक्षा की कैनेथ एस. गॉडमैन द्वारा अपनी किताब, 'द ट्रुथ अबाउट डाइबेल्स: व्हॉट इट इज़, व्हॉट इट डज़' (2006), पोर्टस्माउथ एन.एच. हाइनमैन प्रकाशन, में जमकर आलोचना की गई है।

- प्रगट शिक्षण संस्थान ने प्रगट वाचन पद्धति (वाचन सिखाने के लिए पी.एस.एस द्वारा अपनाई गई पद्धति) नाम से मराठी में एक डीवीडी फिल्म बनाई है। अँग्रेज़ी के उपशीर्षकों के साथ इसका एक अन्य संस्करण जल्दी ही उपलब्ध होगा।
- आज ध्वनि-इकाइयों के बोध की ज़रूरत को व्यापक तौर पर स्वीकार किया जाता है। बल्कि, इसे सन् 2000 की उस नेशनल रीडिंग पैनल रिपोर्ट में भी शामिल किया गया है जिसने एन.सी.एल.बी. का आधार तैयार किया। मैं यह भी जोड़ना चाहती हूँ कि हालाँकि मैं इस रिपोर्ट के कुछ पहलुओं से सहमत हूँ पर मैं एन.सी.एल.बी. कानून के सख़्त विरोध में हूँ जो कि एक कठोर क़दम है।

मैक्सिन बर्न्टसन का जन्म अमेरिका में हुआ था। वे एक भाषाविद हैं और 1966 से पश्चिमी महाराष्ट्र के एक तालुका कस्बे, फल्टन में रह रही हैं। वे प्रगट शिक्षण संस्था (पीएसएस) की संस्थापिका व निदेशक हैं तथा *सेन्टर फॉर लैन्ग्वेज, लिट्रेसी एण्ड कम्युनिकेशन* की निदेशक हैं, जो हाल ही में सर रतन टाटा ट्रस्ट की वित्तीय सहायता से पीएसएस के संरक्षण में ही शुरू किया गया है। वे टाटा इंस्टीट्यूट ऑफ सोशल साइंसेज़ के एमए इन एलिमेन्ट्री एजुकेशन प्रोग्राम की अतिथि अध्यापक भी हैं, जहाँ वे और जेन साही *फर्स्ट लैन्ग्वेज पैडागॉजी* का पाठ्यक्रम पढ़ाते हैं। उनसे maxineberntsen@rediffmail.com पर सम्पर्क किया जा सकता है।

यह *Learning Curve, Issue XIII (Language Learning)* अक्टूबर, 2009 में प्रकाशित लेख Teaching Early Literacy in Indian Languages का हिन्दी अनुवाद है।

अनुवाद : भरत त्रिपाठी **पुनरीक्षण एवं सम्पादन :** राजेश उत्साही